उभरते-रंग

रचयिता
मुनि श्री दुलीचन्द जी 'दिनकर'

०
०
०

प्रस्तावना
डॉ० छगनलाल शास्त्री,
एम० ए० (त्रिधा) पी-एच० डी०

०
०
०

प्रकाशक
जीतमल कुन्दनमल घीया, शार्दूलपुर (राजस्थान)

पुस्तक
उभरते [illegible]

●

प्रकाशन-व्यवस्था
'साहित्य-सौरभ'
'शान्ति भवन'
६४ ए एम लेन
चिकपेट, बैंगलूर—२ A

●

प्रथम अवतरण
जनवरी १६७०

●

मूल्य
एक रुपया पचास पैसे

●

मुद्रक
रामनारायण मेडतवाल,
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस,
राजा की मंडी आगरा—२

समर्पण

●

जिनकी असीम करुणा के द्वारा कुछ लिख पाया हू,

जिनके अनुग्रह से बोलने की क्षमता पाई है,

और जिनकी सुखद सेवा मे रहकर

जीवन रहस्य को समझा है—

उन्ही आचार्य श्री तुलसी के

चरण कमलो मे

—मुनि 'दिनकर'

दो शब्द

कुछ समय पूर्व एक दिन मैं 'साहित्य-प्रभाकर' नाम की एक पुस्तक पढ रहा था। जो कि कलकत्ता ओसवाल प्रेस द्वारा मुद्रित हुई थी। पुस्तक मे अनेक कवियो की विभिन्न भाषाओ मे, विभिन्न रचनाए देखी, साथ-साथ मे राजिया, किशनिया आदि के सोरठे, दोहे भी पढे। बहुत ही सरल भाषा मे मार्मिक भाव व्यक्त किये गए थे। थोडे शब्दो मे भाव अधिक और वे भी हृदय पर चोट करने वाले, उसे ज्यो-ज्यो पढता गया, भाव विभोर होता गया। थोडे शब्दो मे भाव व्यक्त करने का यह प्रकार मुझे बहुत ही जचा—

जो हियो हुवै हाथ, कुसगी केता मिलो।
चवन भुजङ्गा साथ, कालो न लागे किसनियाँ॥

रँटधो पूणी राम, इतरो कारज रावलो।
ओकरियाँ री काज, राजकथा स्यू राजिया॥

मेरे हृदय पर उन सरल बोध्योपदेशक सोरठो का गहरा रग लगा, और मैंने देखा कि मेरे मानसपटल पर भी विभिन्न प्रकार के भाव

उभर रहे हैं । फलस्वरूप उन भावो को राजस्थानी भाषा मे बाधने का प्रयत्न किया । इस रूप मे मेरी यह एक पहली रचना है ऐसा समझना चाहिए ।

मैंने अपने उन उभरने वाले भावो को रगो की सज्ञा दी है । अत समझना चाहिए कि प्रस्तुत रचना का 'उभरते-रग' नाम ही समुचित बैठता है ।

मैं समझता हू जिस प्रकार मेरे मानस पर उन सोरठो का रग लगा, इसी प्रकार उभरते-रग के सोरठो, दोहो का रग भी इसके पाठको पर लगेगा, ऐसा मेरा अनुमान है ।

मुनि 'दिनकर'

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री मुनि श्री 'दिनकर' जी के पास हस्तलिपि-बद्ध थी। अहमदाबाद चतुर्मास मे श्री टीकमचन्द जी डागा ने मुनि श्री से भजनो की पुस्तक की याचना की उस समय यह पुस्तक भी उनके ध्यान मे आई और उन्होने इस पुस्तक के लिए भी मुनि श्री से प्रार्थना की। मुनि श्री ने उनकी प्रार्थना पर अपनी स्वीकृति दे दी।

जुगलकिशोर भोजक ने इसे धारने का कार्य अपने हाथ मे लिया। मुनि श्री पानमल जी 'प्रदीप' ने पुस्तक के अन्यान्य कार्यों मे सहयोग दिया। साहित्य-सौरभ बेंगलूर जिसकी देख-रेख मे इसका प्रकाशन कार्य हुआ, श्री ताराचन्द जी छाजेर ने पुन प्रति को लिखकर इसे व्यस्थित किया और ब्रह्मदेव जी जिनके द्वारा छपाई का प्रबध हुआ इन सभी महानुभावो के हम हृदय से कृतज्ञ हैं। आशा है इस सुन्दर सत-कृति का अधिक से अधिक सदुपयोग होगा।

वि० स० २०२६
कार्तिक पूर्णिमा

कुन्दनमल धोया

प्राप्ति स्थान

•

कुन्दनमल धीया
मारवाडी स्टोर्स
किशनगज वाजार (पूर्निया)
(विहार)

•

जीतमल कुन्दनमल धीया
शार्दूलपुर (चूरू)
(राजस्थान)

साहित्य-सौरभ
'शान्ति भवन'
६४, ए० एम० लेन, चिकपेट
वेंगलूर २–A

प्रस्तावना

●

जब अन्तरतम मे भावो की सघनता, परिस्थिति की अनुकूलता, जिसे काव्य की भाषा मे आलम्बन, उद्दीपन आदि नामो से अभिहित किया गया है—पाकर तिलमिला उठती है तब अभिव्यक्ति का दामन लिए प्रकाश म आन वाले शब्द 'कविता' बन जाते हैं। कविता भाव विगलित हृदय का स्पन्दन है।

एक और पक्ष है, जो काव्य की उपयोगिता—उपयोगितावाद से सम्बद्ध है। महान काव्यशास्त्री मम्मट ने काव्य के प्रयोजनो पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

> काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
> सद्य परनिर्वृतये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

इस कारिका मे आचाय मम्मट ने परम शान्ति-आत्मानन्द के अतिरिक्त यश, अथ, व्यवहार-ज्ञान और कान्तासम्मित उपदेश के रूप मे काव्य के जो चार प्रयोजन बतलाए हैं, वे उपयोगितावाद से जुडे हैं। लौकिक जीवन मे साक्षात अथच स्थूल लाभ की ओर हर किसी का आकपण होता है। अतएव विशुद्ध सौन्दयवादी दृष्टि कोण की तुलना मे काव्य के क्षेत्र मे उपयोगिता वादी दृष्टिकोण का पलडा भारी रहा। वैसा साहित्य बहुत रचा गया, जो उपदेश की दृष्टि से महत्वपूण था। इसके लिए सस्कृत मे अधिकाशत अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ और हिन्दी, राजस्थानी आदि मे दोहा और सोरठा का। दोहा मात्रिक छन्द है। दोहे के प्रथम व तृतीय चरण म तेरह तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण मे ग्यारह मात्राए होती हैं। दोहे का उल्टा सोरठा होता है। उसके प्रथम व तृतीय चरण मे ग्यारह तथा द्वितीय व चतुथ चरण मे तेरह मात्राए होती हैं।

दोहा छन्द अपभ्रंश साहित्य का मुख्य छन्द है। सहजयानी व वज्रयानी बौद्ध सिद्धो के दोहा कोश सुप्रसिद्ध हैं। जिनमे दोहों द्वारा लोक-भाषा मे सहजयानी सिद्धान्तो का सरल रूप में विवेचन हुआ है। दोहा कोश साहित्यिक रचनाए नहीं हैं, वे औपदेशिक हैं। अपभ्रंश की एक बहुत महत्वपूर्ण रचना है स्वयभू का 'पउमचरिउ'। यह एक साहित्यिक कृति है। यही वह मुख्य स्रोत है जिसमें उत्तरवर्ती काव्यधारा मे दोहा, सोरठा, रड्डा, चौपाई आदि का विशेष रूप से अवतरण हुआ। फलत शौरसेनी या नागर अपभ्रंश से विकसित होने वाली पिंगल, डिंगल, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओ के ऐतहासिक, धर्म-कथात्मक तथा उपदेशमय साहित्य मे इन छदो का विपुल प्रयोग हुआ व होता आ रहा है। तुलसी का रामचरितमानस इसका ज्वलन्त उदाहरण है। साथ ही प्रेममार्गी सभी सूफी कवियो ने, जिन्होने अवधी में अपने प्रबन्ध-काव्य लिखे, इसी दोहा, सोरठा व चौपईमय शैली को अपनाया। हाल की गाहा सत्तसई की शैली मे हिन्दी मे रचित सतसइयों मे प्राय दोहा, छन्द प्रमुख प्रयुक्त हुआ है।

सोरठा दोहे का प्रकारान्तर है। शायद सोरठ या सौराष्ट्र प्रदेश मे प्रारम्भ या अधिक प्रचलित होने के कारण इसका यह नाम पडा हो। राजस्थानी मे अन्त प्रेरक भावो के सफल सवाहन के लिए इस लघुकाय छन्द की बडी ख्याति है। अनेक कवियो ने सोरठे लिखे हैं। उन द्वारा उन्होंने अपनी अनुभूतियों को शब्द रूप दिया है, जिनका लोक-जागरण के क्षेत्र मे नि सन्देह बहुत बडा महत्व ह। ऐसा कौन राजस्थानी होगा जो राजिए के सोरठो मे परिचित न हो।

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता मुनि श्री दुलीचदजी 'दिनकर' जो राष्ट्र के महान सत, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के अन्तेवासी है अपने यौवन के उदय-काल से एक श्रमण का पवित्र व उदात्त जीवन बिता रहे हैं। वें एक प्रखर विद्वान तो हैं ही, एक द्रष्टा के रूप मे उन्होने जीवन मे बहुमुखी पक्षो को भी देखा है, परखा है। यों ज्ञान और अनुभूति के सगम ने उनके विचारो

को वह निखार दिया है, जिसमे तत्व ज्ञान के साथ-साथ व्यवहार्यता एव लोकजनीनता के सदर्शन होते हैं। मुनि 'दिनकर जी' सस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी के कुशल गीतकार है उन्होने अनेक विषयो पर बडे मधुर सरस एव अन्त स्पर्शी गीत लिखे हैं। आत्म लहरी, निर्झर, आत्म-पराग, सगीत-सुधा नामक पुस्तको के रूप मे उनके गीत प्रकाशित है। उन्मेष' नामक उनकी कविताओ का सग्रह उनके काव्यकृतित्व का स्पष्ट निदर्शन है। वे एक गद्यकार भी हैं। उनकी कलेवर म लघु, पर विचार-सामग्री की दृष्टि मे वृहत 'कल्पना-कुञ्ज' नामक पुस्तक स्फुट गद्य-गीतो का एक उत्तम नमूना है।

मुनि 'दिनकर' जी का प्रस्तुत कृति से पूर्व का साहित्य काव्य सुषमा और सद्विद्या का समीचीन समन्वय लिए है। प्रस्तुत पुस्तक मुख्यत औपदेशिक दृष्टि से रचित है। अत इसमे सूक्ष्म काव्य-तत्वो की खोज का प्रयास पाठक नही करेंगे। इससे प्राप्य सतशिक्षा को अपने मे सजोएँगे। फिर भी इन सोरठो मे भाषा की सरलता, भावो की निर्मलता और निरूपण की विशदता सर्वत्र अनुस्यूत है।

इन सोरठों मे कवि के हृदय की निश्छलता का स्पष्ट दर्शन होता है। जैसा उन्हें अनुभूत या प्रतीत हुआ, उसे निर्व्याजरूपेण स्पष्ट शब्दो म उन्होने प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ कृत्रिम प्रेम या हितैषिता की कलई खोलते हुए वे लिखते हैं—

> ऊपर स्यू अति हेत, पण अतस खाडा खणे।
> बिना बीज को खेत, चेतन ! आसी काम के ?

कानो मे पड़ते ही पाठक के अन्तरतम पर एक चोट-सी लगती है, जो काव्य का यथार्थ कतित्व है।

मुनि श्री ने स्वार्थ की हेयता, सदाचार की महत्ता, क्रियाशीलता हृदय की स्पष्टता, निश्छलता, वाणी की मृदुता एव मधुरता, आलस्य की

परिव्राज्यता, ऊँच-नीच के भेद की परिहेयता आदि विषयो पर सोरठो की रचना की है, जो प्रस्तुत पुस्तक मे सकलित हैं।

वाणी के सम्बन्ध मे वे बडे सचोट शब्दो मे कहते हैं—

वचन-रतन मुख-कोट, परख-परख कर काढिए।
दिल मे पहुचे चोट, चेतन! तेह निवारिए॥

समता पर उनके विचार बडे प्रेरक व मननीय हैं—

ऊच-नीच रो भेद, धन स्यू कोई मत करो।
हुया एकता छेद, चेतन! धन टिकसी कठे॥

बुभुक्षा के भीषण और दु सह रूप का उन्होने बडा सजीव चित्रण किया है—

तज देवै घर-बार, तजे मिनख सुत मारने।
लीला अपरपार, चेतन! भूख न तज सके॥

इसी प्रकार अन्यान्य विषयो का निरूपण भी स्फूर्तिप्रद एव उद्बोधक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक वस्तुत राजस्थानी की सोरठा शैली की उपदेशमयी काव्य-परम्परा को मुनि श्री 'दिनकर' जी की एक प्रशान्त देन है। वे इस प्रकार के और भी लोक-जीवन साहित्य का सर्जन करेंगे, जिससे मानव-समाज को सात्विक, चरित्रनिष्ठ एव नैतिक जीवन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी, ऐसी आशा है।

डा० छगनलाल शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत व जैनोलोजी)
पी-एच० डी०

बेंगलोर
१४-११-६६

उ भ र ते

र

ग

सोरठा

१

चित्त मे धर उल्लास,
गुरु-चरणाम्बुज मे नमू ।
वाट बतावण खास,
चेतन ! तै धुर शिव तणी ॥

२

बाधा विघन विखास,
वारू तीखै तप बले ।
पूरण रूप विभास,
फेर सोरठा शत रचू ॥

३

स्वारथ वश बदनीत,
नीम खाय मीठो कहै ।
विन स्वारथ नवनीत,
चेतन ! चख खारो अखं ॥

४

वाणी रो विस्तार,
घणा - जणा मे लाधसी ।
पण चेतन ! आचार,
विरला सू ही वण पडै ॥

५

ओ ऊपर लो ˘ साग,
खर गाडर मे भी मिलै ।
किरिया खूटी टाग,
चेतन ! चेतन कद तिरै ॥

६

चुगली रो अति चाव,
चुगलखोर चित मे धरै ।
जिम सटोरियो दाव,
चेतन ! चितवतो रहै ॥

७

मजबूरी मे मौज,
मानो चाहै मानवी ।
पण है दुख री बोज,
चेतन ! चित नें मातरी ॥

८

झूठ सुधा बे-बूंद,
घोले घर-घर मानवी ।
जहर साच की बूंद,
चेतन ! मिले न मरणनैं ॥

९

ऊपर स्यू अति हेत,
पण अन्तस खाढा खणे ।
बिना बीज को खेत,
चेतन ! आसी काम के ?

१०

जग विसरयो आचार,
ऊपरलै व्यवहार मे ।
किम रोकड-रो कार,
चेतन ! चलसी ठीकरया ॥

११

कल-जुगरी आ रीत,
निजमुख निजवर्णन करै।
पालै ओछी प्रीत,
चेतन ! पग पग चातरै ॥

१२

विकथा विलकुल वार,
भोला ! मतकर भूल कर।
ओ हाडा रो हार,
चेतन ! कुण घालै गलै ?

१३

मन पर कसो लगाम,
हुड हुड हसो न हीमत्या !
ओ भडवारो काम,
चेतन ! चोगो चतुर तू ।।

१४

सौ वर्षां रो प्रेम,
चेतन ! चुगली चाटज्या ।
झोलो झटकै जेम,
खड्यो खेत ने चूसज्या ।।

१५

चुगलखोर धर चूप,
वैर बधावै वन्धवा ॥
ओ ऊडो अधकूप,
चेतन ! पर–हो चालजे ॥

१६

स्वारथ मे सब छूट,
मन मान्यो जिम लादियो ।
अब तो टूटयो ऊट,
चेतन ! झूरै चोसरा ॥

१७

काम कुचेष्टा वीच,
खुली-खरावी है खरी।
मत पड आख्या मीच,
चेतन ! खुद ही चेतज्या ॥

१८

वैरी तणा वखाण,
चेतन ! चित भावै नही।
मादल री मृदुतान,
जिम मांदो सुणनै चिडै ॥

१९

सरल सघीरी नेक,
नारी गुणरी खान है।
आ अमृतरी टेक,
चैतन ! चोकस राखवै ॥

२०

तू दे जिणपर जीव
(वै) मरै भार ओरा तणै।
दे धोरै पर नीव,
चेतन ! क्यू खोटी हुवै ?

२१

चालै मधुरी चाल,
जे स्याणो माणस हुवै ।
मछुवैं तणी उछाल,
चेतन ! भली न चोकस्या ।

२२

परको करी विगाड़,
भलो आपको जे चहै ।
बीज बँबल को गाड़,
चेतन ! आम्बो किम चहै ? ॥

२३

खर मे कित्ती खोट,
दिल मे दरज करो न थे।
खटणी केगी ओट,
चेतन ! छिप ज्यावे सभी ॥

२४

प्यासै नै जलबूंद,
काम करै अति आकरो।
लव मातर जिम गूंद,
चेतन ! फाटयो चेपवै ॥

२५

वात तणै वड मोल,
मरणो माडै मानवी ।
श्वान मचावै रोल,
चेतन ! चिमठी चून पर ।।

२६

निकमापणो विमास,
माटी माहे रोलवै ।
ज्यूं वन सूको घास,
चेतन ! चिंथीजै पगां ।।

२७

साच तणी करतूत,
कडवी कुटकी आद मे ।
मीठी जिम सहतूत,
चेतन ! अन्ते चाखजे ॥

२८

परखी परकी भूल,
मानव मन मुलकै घणो ।
चेतन ! तिण सिर धूल,
अवगुण लखै न आपका ॥

२६

धन जोबन ले लूट,
पर नारी री प्रीतडी ।
काल कूट री घूट,
चेतन ! छंडै न छूत भी ॥

३०

हियै न मातो हेत,
चेतन ! स्वारथ मे सदा ।
चोरावै अव लेत,
पढ्यो पिण्ड जिम ठोकरा ॥

३१

मन आवै जद नूत,
स्वारथ मे जीमण सझ्या ।
पड्यो ईख नो छूत,
चेतन ! अब चोगाड मे ॥

३२

विद्या तणो घमण्ड,
मतकर वन्दा ! बावला !
पग - पग मिलसी डण्ड,
जिम कटाली राह मे ॥

३३

पुनवानी रै जोर,
मानव मनमानी करै ।
पण, सावण का लोर,
चेतन ! किता'क चालसी ॥

३४

गुणिया रो न पिछाण,
वतुआँ स्यू बाथ्या मिलै ।
ते घर बीत्यो जाण,
चेतन ! चेजो रेत को ॥

३५

मीठी मधुरी गंध,
लख कोई लूटै खरो ।
काटा तणो प्रबन्ध,
चेतन ! करै गुलाब यूं ॥

३६

आक तणो अकतूल,
रोही मे रुलतो फिरै ।
चिहु दिशि चाटै धूल,
चेतन ! हलको मानवी ॥

३७

साभल निर्मल नीर ।
तू भी जो कीचड वर्णे ।
काजल - कालो चीर,
चेतन ! कुण उजवालसी ॥

३८

मेटो निजरी खोड,
पर ओगुण भालो मती ।
गुण ही गुण ल्यो जोड,
चेतन ! चोकस चाकनै ॥

३९

द्रोह तणै दरबार,
भूल चूक पण मत चढी ।
होसी घणो खुवार,
चेतन ! चोडै चानणै ॥

४०

बुरी नजर न निहार,
पर नारी ने प्रेम-हित ।
जावै पुन - परवार,
चेतन ! रच न फरक है ॥

४१

भोला करै विचार,
चेतन ! मान अमान रो ।
स्याणा सरधै कार,
आ वाता उलझै नही ॥

४२

सता नी पर रोज,
समता नै रख साथ मे ।
मिलसी दिन - दिन मोज,
चेतन ! चोखै भाव स्यू ॥

४३

चुगलखोर चित चाव,
वैर वधावै वन्धवा ।
नरका पडै पडाव,
चेतन ! चाडी खोर रो ।।

४४

चमत्कार स्यू आज,
जग माही पूजा लहै ।
मूल गमाया व्याज,
चेतन ! कह, कद घर भरै ?

४५

सुख मे दे सत्कार,
दुख मे दुत्कारा करै।
सो सो वर धिक्कार,
चेतन! तेह कुटुम्बने ॥

४६

दुर्जन केरो सङ्ग,
चेतन! कदे न आदरी।
लागै कालो रग,
बसिया काजल कोटडी ॥

४७

पाकर के सहयोग,
घास फूस पण वढ चलै।
गल मे घाल्या तोख,
चेतन! धोरी बैठज्या॥

४८

मतना भर दिल चीर,
कमजोरी किण ही विपै।
साहस भर वडवीर!,
चेतन! चोखै चाव स्यू॥

४६

सजना ने पण बोल,
कमजोरी का बोल मत ।
घट ज्यावैला मोल,
चेतन ! चौमुख चतुर को ॥

५०

सुनकर निवला वैण,
वीर पुरुष पग ढह पड़ै ।
चेतन ! कर तू चैन,
एह बला थी दूर रह ॥

५१

बदजे एहवा वैण,
जो सहु नै सुखकर हुवै ।
मानै अद्‌भुत देन,
चेतन ! चतुर विचार मे ॥

५२

साची सीख मुदच्छ !,
गमती लागै लोक मे ।
झूठी स्यू परतच्छ,
चेतन ! झडज्या माजणो ॥

५३

काम करो सुविचार,
हर वेला हर दृष्टि न्यू ।
उपजै दुख अपार,
चेतन ! अण सोचे किया ।।

५४

आकीजै है मोल,
मिनख तणो पाणी परख ।
सरित हुवै बेडोल,
चेतन ! पाणी ऊतरया ।।

५५

प्राणा रो मोह छोड,
राख लीक निज वचन री ।
होसी पूरा कोड,
चेतन ! चोकस परवडा ।।

५६

वचन निवाहण हेत,
'नीर' नीच घर जा भरयो ।
शास्त्र साख इम देत,
चेतन ! हरचद राज की ।।

५७

बे-मोकै री बात,
भूल-चूक पण मत करी ।
जग मे खत्ता खात,
चेतन ! चूक्या मानवी ॥

५८

गुडी वाला बोल,
सुपने पण मत चिंतजे ।
दे दिल गुडी खोल,
चेतन ! चरचीजे इसा ॥

५६

खतरै स्यू नहि वाद,
कोरो लव-लव वोलणो ।
सुघड न लेवै स्वाद,
चेतन ! चर - चर करण मे ॥

६०

वचन रतन मुख कोट,
परख परख कर काढिए ।
दिल मे पहुचैं चोट,
चेतन ! तेह निवारिए ॥

६१

एक टहूकै पाण,
कोयल मन मोहित करै ।
कडवा कर दे कान,
चेतन ! खर इक तान स्यू ॥

६२

वचना तणौ मिठास,
जहर पुराणो उतरज्या ।
कडुवो बोल्या खास,
चेतन ! दाझै कालजो ॥

६३

सुणकर मधुरी तान,
विषधर पण वश मे हुवै ।
कडवी ऊपर कान,
चेतन ! खर भी ना धरै ॥

६४

मान वडाई भूल,
साथ सरलता रो करो ।
जीवण रै अनुकूल,
चेतन ! मारग पाधरो ॥

६५

जिण रो सरल स्वभाव,
गमतो लागै गांव नें ।
कुटिलाई रो दाव,
चेतन ! मन फाडै तुरत ॥

६६

सरस सरलता छोड,
कुटिलाई मे रच पचे ।
जनम-जनम मे खोड,
चेतन ! तिणस्यू चिपक ज्या ।

६७

पढ लिख हुयो हुस्यार,
जीव दया जाणी नही ।
ते नर निरो गिवार,
चेतन ! इण ससार मे ॥

६८

मान तणै मुपसाय,
रुलग्या केई नरक मे ॥
नित रा जरवा खाय,
चेतन ! तडफै ते पडया ॥

६९

जेहनो वचन अडोल,
पाणी मे पत्थर तिरै ।
बधतो जावै मोल,
चेतन ! तिण मानव तणो ॥

७०

भणिया शास्त्र अपार,
पण पूठा गुणिया नही ।
रोकड बिना सभार,
चेतन ! काम न चालसी ॥

७१

एक सूठ की गाठ,
लेकर पसारी बणै ।
ते नर सपटम-पाट,
चेतन ! कदे न पागरै ।।

७२

फरनीचर रै ठाट,
मदिर शोभित ना हुवै ।
लोह लक्कड गहघाट,
चेतन ! मिनखा लार है ।।

७३

जग जश लहै न नेक,
जो गोवर-खीलो हुवै ।
पूरी रहसी टेक,
चेतन ! स्थिर चित्त जो हुवै ॥

७४

पूठै करो न वात,
सामै कहो बजायकर ।
अवगुण दूर पुलात,
चेतन ! मिलज्या, चेतना ॥

७५

आलस रो परिवार
विकथा नीद दलिद्रता ।
तेहनै तू मत धार,
चेतन ! रखजे चातुरी ।।

७६

भूंडो दीखै नूर,
मद्यप नो मुड्दै जिसो ।
घोवा भर भर घूड,
चेतन ! सिर तेहनै पडै ।।

७७

आलसिया स्यू प्यार,
भूल चूक करज्यो मती ।
ले डूबैला लार,
चेतन ! चेतै राखज्यो ॥

७८

वात बडी नही वीर !
बतुवै नँ मानो वडो ।
कर देखावै खीर,
चेतन ! खाटी राब नँ ॥

७९

भूख तणी कुण साख,
भरसी जग मे वावलो।
कर दे चट पट आख,
चेतन ! मोटै मिनख रै॥

८०

टुकडै टुकडै हेत,
तरसै तीसू रोज ही।
भूख माजणो लेत,
चेतन ! चोखै मिनख रो॥

८१

भूखो भूजै भाड,
लोक लाज नै छोड कर ।
इण पापण रै पाड,
चेतन ! नर ओछो हुवै ॥

८२

बडी अभागण भूख,
चेतन ! पाप करावणी ।
छोडी मावड कूख,
तिण दिन सू लारै पडी ॥

८३

पापी पेट पसाय,
देखँ दुख दुरन्त नर ।
छाल रूखरी खाय,
चित्त ! कर्मगति वाकडी ॥

८४

तज देवँ घर-वार,
तजँ मिनख सुत - नार नँ ।
लीला अपरपार,
चेतन ! भूख न तज सके ॥

८५

चोरी को चित्त चाव,
चढ्यो चोर के जिण दिनै ।
पाछा पडग्या पाव,
चेतन ! भलपण करण हित ॥

८६

खापण बाधी शीश,
घोर निशा मे निकलज्या ।
हिम्मत विश्वा-बीस,
चेतन ! खोटे चोर मन ॥

८७

रोवै तस्कर मात,
मुह घडलै मे घाल नै ।
विगड्या सारी वात,
चेतन ! कारी ना लगे ॥

८८

चोरी खोटो कार,
मरणं पर दुर्गति लहै ।
इण भव दुख अपार,
चेतन ! वारी गिणत के ॥

८९

व्यभिचारी को भाग,
फूटयोडो समझो सदा ।
घर घरणी री लाग,
चेतन ! जो तज, रुल हुवै ।।

९०

व्यभिचारी रे बीच,
अवगुण नित नूं वा बसै ।
छल-बल खाचा खीच,
चेतन ! पार न पा सके ।।

८७

रोवै तस्कर मात,
मुह घडलै मे घाल नैं ।
विगड्या सारी वात,
चेतन ! कारी ना लगे ॥

८८

चोरी खोटो कार,
मरणं पर दुर्गति लहै ।
इण भव दुख अपार,
चेतन ! वारी गिणत के ॥

८९

व्यभिचारी को भाग,
फूटचोडो समझो सदा ।
घर घरणी री लाग,
चेतन ! जो तज, रुल हुवै ।।

९०

व्यभिचारी रे बीच,
अवगुण नित नूवा वसै ।
छल-बल खाचा खीच,
चेतन ! पार न पा सके ।।

६१

पर-नारी नी प्रीत,
पर-भव पूरी सालणी।
इण-भव होय फजीत,
चेतन! सशय है नही॥

६२

उठ जावे विश्वास,
पापी व्यभिचारी तणो।
प्रतिपल पावे त्रास,
चेतन! जग मे जार नर॥

९३

लालच तणो लगाव,
बुरो बतायो सन्त जन ।
गहरो घालै घाव,
चेतन ! चिपकर आत्म कै ॥

९४

लोभ लाय स्यू दूर,
चेतन ! रहजे सासतो ।
लपटा उछलै क्रूर,
खिण में बाल करै भसम ॥

९५

सप हुवै भरपूर,
लालच स्यूं फाटो पडै ।
धन री उडज्या धूर
चेतन ! चित मे चाकले ॥

९६

लोभी मे नही होय,
साधारण व्यवहार भी ।
देत माजणो खोय,
चेतन ! कोडी कारणै ॥

९७

मेल जोल री वात,
लोभी नर चावै नही ।
चितै पर की घात,
चेतन ! छल-बल केलवै ॥

९८

कुण ऊँचो कुण नीच,
मिनख मात्र है एकसा ।
भेद रेख मत खीच,
चेतन ! जो चाहै भलो ॥

९९

ऊच नीच रो भेद,
धन स्यू कोई मत करो ।
हुया एकता - छेद,
चेतन ! धन टिकसी कठै ? ॥

१००

गुण स्यू करजे मोल,
मानव जो मतिमान तू ।
विना विचारया बोल,
चेतन ! मुह मत घालजे ॥

१०१

लघुजन पर नित राख,
बच्छलता हद स्यू घणो ।
विनय तणी शुभ साख,
चेतन ! गुरुजण साथ मे ॥

१०२

बाता रा रमझोल,
दूरा कर दे दक्ष तू ।
मत कर ठट्ठा - ठोल,
चेतन ! कद ही भूल कर ॥

१

तन से मन से वचन से,
औरो को सताप ।
चेतन ! मत दे भूल कर,
यही नीति की थाप ॥

२

ओरो को सताप दे,
पाता है सुख कौन ?
तुम जो बोलोगे वही,
मित्र ! कहेगा फोन ॥

३

पीडित करके अपर को,
जमा रहा निज खेल ।
चेतन ! मिल मकती नही,
उसको सुख की रेल ।।

४

भूल चूक कर भी कभी,
करे न पर की घात ।
चेतन ! पा मकता वही,
चिर सुख की मौगात ।।

५

पर को दुख देकर भला !,
चेतन ! चाहे चैन ।
छारी के दे दाम वह,
कामधेनु चहे लेन ॥

६

आत्म तुल्य जो मानता,
औरो को नर धीर ।
अपराधी को भी क्षमा,
चेतन ! दे बहवीर ॥

७

पर पीडा को जो यहा,
अपनी माने सद्य ।
चेतन ! वह नर लोक मे,
है पूरा अनवद्य ॥

८

सतत सत्य का आचरण,
किए परम सुख होय ।
चेतन ! वोए आक तो
आम कहा मे होय ॥

९

जिसने दिल मे दे दिया,
पूर्ण सत्य को स्थान ।
चेतन ! उसने पा लिया,
आत्मिक सुख अम्लान ॥

१०

सत्य-सुधा, शाश्वत सही,
जीवन का आधार ।
चेतन इसको मानिए,
श्री भगवद् अनुहार ॥

११

झूठ बोलकर आफतें,
ले ले जो गल बीच ।
चेतन ! वे अन्धकूप मे,
पडते आखें मीच ॥

१२

मुख चाहता नर झूठ का—
लेकर के आधार ।
चेतन ! कटुकी बोय के,
चाहे दाख गवार ॥

१३

झूठ बोल बे-ताल की,
रखता पूरी टेंट ।
पर चेतन ! गोमूत्र का,
कब बनता है सेंट ।।

१४

वस्तु पराई को कभी,
मनुज उठाए जो न ।
चेतन ! उसके सामने,
आख उठाए कौन ।।

१५

तृण भी पर का जान के,
जो न लगाए हाथ।
चेतन! ऐसे पुरुष को,
देते सारे साथ॥

१६

भूल चूक कर भी कभी,
चोरी मत कर भ्रात।
चेतन! तस्कर घर पड़ें,
वासर में भी रात॥

१७

घर हानि लोकोपवाद,
हो चोरी के पान ।
चेतन ! दडित राज मे,
दुनिया खीचे कान ॥

१८

चोरी से परलोक मे,
आ यम पकडे हाथ ।
चेतन ! तब तो बधुवर्ग,
कौन कौन दे साथ ॥

१६

शीलवत ससार मे,
पग-पग पाता जीत ।
चेतन जो सैना सुघड,
पाती विजय पुनीत ॥

२०

तर जाते, वल शील के,
पत्थर पानी वीच ।
चेतन ! तो फिर क्यो न नर,
मुक्ति हाथ ले खींच ॥

२१

शील सहित सीता सती,
पाई सुयश अपार।
कुन्ती की भी बह रही,
चेतन! यश की धार॥

२२

शील-ज्योति बिन मनुज हा,
लगता बडा कुरूप।
चेतन! दीपक के बिना,
ज्यो मंदिर — विद्रूप॥

२३

पर-नारी का भूल कर,
मानव मत कर सग ।
चेतन ! क्यो है भूलता,
रावण कीचक ढग ॥

२४

पर - ललना - लपट कभी,
पा न सका है चैन ।
चेतन ! दो घट-चित मे,
उसके जा दिन रैन ॥

२५

वेश्या - सग करो न तुम,
यह है नगर की जूठ ।
चेतन ! उसके सग से,
शक्ति सभी जा टूट ॥

२६

तन धन यौवन चूस कर,
यह है बनाती छूत ।
चेतन ! उसके सग जा,
देशान्तर आकूत ॥

२७

व्यभिचारी मसार मे,
खाता नित फटकार ।
चेतन ! कुत्ते की तरह,
मिलती है दुत्कार ॥

२८

व्यभिचारी ममार मे,
मरे श्वान की मोत ।
चेतन ! मिट जाए सभी,
नाम ठाम कुल गोत ॥

लालच से होते सदा,
जान मान सब नाश ।
समझ बूझ क्यो ले रहे,
चेतन ! गल मे पाश ॥

३०

धनावर्त में उलझकर,
डूब रहा ससार ।
चेतन ! जो बोझिल बना,
कब पाता है पार ॥

३१

लकुट लोभ का विश्व मे,
करता चोट अपार ।
चेतन ! नजर न आ रहा,
पर देता है मार ॥

३२

जैसे जैसे लाभ हो,
वढे लोभ एकान्त ।
घी पाकर के आग कव,
चेतन ! होती शान्त ॥

३३

लालच से कव भी यहां,
हुआ, न हो सुख लेश ।
ज्यो ज्यो कम्वल भीजतो,
चेतन । बढता क्लेश ॥

सोरठा

३४

खर तज दी, पिण लोग,
तम्वाखू ने आदरे ।
खूब खरीदे रोग,
खोवे धन निज गाठ को ॥

३५

वेच गाय को घी,
तम्बाखू ने मोल लै ।
वी माणसरी घी,
वसे ममदा पार है ॥

३६

हाथ कलेजो दाग,
मिनखा ने दागी करे ।
तम्बाखू री लाग,
खोडिली खोटी घणी ॥

३७

खासी मे जुड जाय,
तम्बाखू पीवे जिका ।
कुत्ता खीर न खाय,
सडै सास रा रोग स्यू ।।

३८

कॅसर — रोगी थाय,
तम्बाखू रे कारणे ।
वे ऊभा नही जाय,
घरथी इम जनश्रुति कहे ।।

३६

मू डो मारै वास,
मोरी सम वदबू वहै ।
फटकै भला न पास,
तम्वाखू रै रसिक रे ॥

४०

चेतो चूकै कोय,
पीता लेता मेलता ।
हानी अनहद होय,
लाय लग्या तन वन तणी ॥

४१

भर्मं चिलमिया काज,
चिलमबाज चक्कर चढ्यो।
खोवै शरम रू लाज,
मगतापरण करतो थको ।।

४२

जिणतिरण नो पिण थूक,
चाटै चाकर चिलमरो।
तिलभर नावै सूग,
नशेवाज रैं पूत ने ।।

४३

वैठ हथाई वीच,
होकै री खिदमत करै।
वात वात मे नीच,
नाहक कलहो मोल ले ॥

४४

होकै केरे साथ,
कदेक कपडा दाझज्या।
कदेक जलज्या हाथ,
ठीक रती भर ना पडै ॥

४५

गुडड- गुडड आवाज,
गु गा पण दरसा रही ।
धिग् धू वे रे साज,
मानवता जल-बल गई ।।

४६

अन्न तरणो सलूक,
घर मे बिलकुल है नही ।
तम्बाखू की भूख,
तो पिण व्यसनी ना तजे ।।

४७/

बण्या रह्या जे दास,
बीडी या सिगरेट रा।
बै हो गया निरास,
जीवण रे मध्याह्न मे॥

४८/

सीच सीच कर खून,
जो पइसो भेलो कियो।
पी बीड्या वे - नू द,
खल खोवै फोकट पणै॥

४६

आछी आछी चीज,
पीवण री जग मे घणी।
(पण) मूरख आख्या मीच,
पीवै जहर जलील रो ॥

५०

तम्बाखू रै नाम,
हो कुर्बा क्यू रो रह्यो।
हाथ कमाया काम,
अब पछताया के बणै ॥